शोध मंथन Vol. XIV No.III June-Sep. 2023 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com*

भाषा विज्ञान का सामाजिक संदर्भ

प्राप्तिः 26.08.2023
स्वीकृतः 15.09.2023

56

डॉ० राजेंद्र घोडे
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे (महाराष्ट्र)
ईमेल : *rajughode@gmail.com*

सारांश

व्यक्ति को समाज से जोड़ने का सबसे उत्कृष्ट साधन भाषा है। सामाजिक व्यवहार के लिए भाषा अनिवार्य है। भाषा किसी समाज एवं राष्ट्र को बनाए रखने का प्रधान उपादान होती है। यह हमारी सभ्यता एवं संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है। समाज से संबंधित जो भी उपकरण होते हैं, भाषा उससे प्रभावित होती है। किसी भाषाई समुदाय के सदस्य भाषा के आधार पर ही अपनी जातीय अस्मिता की पहचान बनाते हैं। भाषा अपने बोले जाने वाले सदस्यों को आपस में जोड़ती है। यह जुड़ाव भावात्मक स्तर पर भी होता है।

मुख्य बिन्दु

भाषा विज्ञान, हिंदी व्याकरण, मानक भाषा, हिंदी की बोलियां, भाषा का समाजशास्त्र, भाषाई अस्मिता, भाषा की संस्कृति, रामविलास शर्मा, आर.ए.हडसन, राइट, ब्लूमफिल्ड, पीटर ट्रुटगिल आदि।

भाषा एक सामाजिक वस्तु है। यह समाज में रहकर अर्जित की जाती है तथा इसका प्रयोग भी समाज में ही होता है। समाज के बिना किसी भी भाषा की कल्पना नहीं की जा सकती। जिस तरह समाज भाषा को गढ़ता है, उसी तरह भाषा भी समाज को गढ़ती है। मनुष्य के सामाजिक होने में भाषा की प्रमुख भूमिका है। यह मनुष्य को सामाजिक प्राणी के रूप में प्रतिष्ठित करती है। अतः भाषा और समाज का अन्योन्याश्रित संबंध होता है। प्रसिद्ध आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा ने भाषा और समाज के विषय में लिखा है– "समाज के बिना भाषा नहीं है, भाषा के बिना समाज नहीं है।"[1]

किसी भी भाषा का जन्म समाज में ही होता है तथा उसका विकास भी समाज एवं संस्कृति में होने वाले परिवर्तन के साथ–साथ होता है। इसीलिए कहा जाता है कि भाषा समाज सापेक्ष होती है। सामाजिक संदर्भों से जुड़े होने के कारण ही भाषा एक ओर व्यक्ति के भावों एवं विचारों को संप्रेषित करती है तथा दूसरी ओर समाज में स्वयं उसकी भूमिका को भी उद्‌घाटित करती है। इस प्रकार किसी भी भाषा का वास्तविक अध्ययन उसके सामाजिक परिप्रेक्ष्य के बिना अधूरा है। प्रसिद्ध भाषाविद् आर.ए. हडसन के अनुसार– "मैं मानता हूँ कि वे सभी लोग जो भाषा का चाहे जिस दृष्टि से अध्ययन कर रहे हैं, उन्हें अपने विषय वस्तु के सामाजिक पक्ष के प्रति सचेत रहना चाहिए।"[2] अतः भाषिक अध्ययन अथवा विश्लेषण समाज–निरपेक्ष कार्य नहीं है। चाहे भाषा व्यवहार हो अथवा उसका प्रयोजन एवं प्रकार्य, उसे सामाजिक संदर्भ में ही समझा जा सकता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसका व्यक्तित्व चिंतन एवं व्यवहार सामाजिक परिप्रेक्ष्य के अनुरूप ही होता है। व्यक्ति और समाज को जोड़ने का कार्य भाषा करती है। भाषा एक व्यावहारिक प्रक्रिया है। यह मनुष्य के सामाजिक कार्य–कलापों से प्रभावित होती है तथा उसे प्रभावित भी करती है। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार– "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, यह सत्य सबसे ज्यादा स्पष्ट भाषा के क्षेत्र में दिखाई देता है। भाषा समाज के सभी सदस्यों के रुचि–भेद, ध्वनि–भेद को समेटकर एक व्यापक स्तर पर समन्वय उपस्थित करती है। इस समन्वय के बिना मनुष्य आपस में विचारों का आदान–प्रदान नहीं कर सकते, दूसरे की बात समझे बिना मिलकर श्रम नहीं कर सकते, वे एक समाज के एक–सदस्य नहीं हो सकते।"[3]

व्यक्ति और समाज के जुड़ने की प्रक्रिया में जिसे हम समाजीकरण कहते हैं, भाषा प्रमुख भूमिका निभाती है। भाषा का विकास सामाजिक विकास के साथ–साथ होता है। मनुष्य सामाजिक आवश्यकताओं के आधार पर भाषा को निरंतर अनुशासित करता रहा है। भाषा समाज से जुड़कर विभिन्न संदर्भों में विकसित और वर्गीकृत होती रही है। इसी कारण डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा है कि– "समाज का अध्ययन किये बिना सामाजिक संपर्क स्थापित करने के साधन का भी अध्ययन नहीं हो सकता।"[4]

व्यक्तियों के बीच जो पारस्परिक संबंध होते हैं, उन संबंधों के संगठित रूप को समाज कहते हैं। यह संबंधों का समुच्चय होता है। इसके सदस्य परस्पर सहयोग करते हैं तथा इसमें संघर्ष की भावना भी होती है। सहयोग एवं संघर्ष दोनों समाज के विकास में सहायक है। समाज को परिभाषित करते हुए प्रसिद्ध समाजशास्त्री राइट ने कहा है कि– "समाज का अर्थ केवल व्यक्तियों का समूह ही नहीं है, समूह में रहने वाले व्यक्तियों के जो पारस्परिक संबंध है, उन संबंधों के संगठित रूप को समाज कहते हैं।"[5] इसी संदर्भ में गिडिंग्स की परिभाषा भी उल्लेखनीय है– "समाज स्वयं एक संघ है, एक संगठन है, औपचारिक संबंधों का पुंज है जिसमें सहयोग देने वाले व्यक्ति परस्पर संबंधित है।"[6]

अतः जब किसी समाज में विभिन्न व्यक्तियों के हित आपस में एक होते हैं। वे एक ही प्रयोजन की सिद्धि करना चाहते हैं तथा एक ही लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं। तभी सहयोग, सामंजस्य और सहभागिता की भावना पैदा होती है। यह भावना ही 'एक समाज की एक भाषा' के सिद्धांत पर बल देती है। आदर्श स्थिति में एक भाषा होने के कारण समाज के प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति का सहयोग मिलता है। एक भाषा के कारण भिन्न–भिन्न व्यवसाय में लगा व्यक्ति उस समाज के प्रत्येक व्यक्ति की शक्ति बन जाता है। भाषा की उपयोगिता पर बात करते हुए भाषाविद् ब्लूमफिल्ड की यह स्थापना महत्वपूर्ण है कि– "श्रम विभाजन और उसके साथ–साथ मानव समाज के सारे कार्य–चलन के मूल में है।"[7]

भाषा और समाज के अंतसंबंध को हम भाषा–व्यवहार के परिप्रेक्ष्य में देख सकते हैं। पाश्चात्य भाषाविद् पीटर ट्रुटगिल ने इस संदर्भ में एक उदाहरण देते हुए कहा है कि कल्पना करें कि ट्रेन के प्रथम श्रेणी के डिब्बे में दो लोग यात्रा कर रहे हैं तथा दोनों एक दूसरे के विषय में कुछ भी नहीं जानते। ऐसी परिस्थिति में सामान्यतः दो बात हो सकती है। पहली यह कि दोनों चुपचाप बैठे रहेंगे या उनमें से कोई समय बिताने के लिए पुस्तक निकालकर पढ़ने लगेगा और दूसरी यह कि एक व्यक्ति दूसरे से किसी तटस्थ विषय, जैसे मौसम आदि पर बातचीत करना शुरू करेगा। हम देखेंगे की किसी तटस्थ विषय पर बात करते हुए दोनों एक दूसरे के बारे में काफी सूचनाएँ प्राप्त कर लेते

हैं। उनके बोलने की शैली, शब्दों का चयन, उच्चारण आदि से इस बात का संकेत मिल जाता है कि दोनों यात्री किस भाषा क्षेत्र से हैं। दोनों की बातों से हमें उनके भौगोलिक, सामाजिक, पारिवारिक एवं सांस्कृतिक परिवेश का संकेत मिल जाता है। अगर दोनों एक ही क्षेत्र के हुए तो दोनों के ध्वनि उच्चारण, शब्दों एवं मुहावरों के चयन में समानता होगी। एक ही वर्ग से संबंधित होने पर भी शब्दावली लगभग समान होगी। यदि दोनों शिक्षित–अशिक्षित, अफसर या नेता वर्ग के हुए तो उनके बोलने का लहजा समान होगा। इस प्रकार औपचारिक वार्तालाप से भी हमें एक–दूसरे के बारे में कई सूचनाएँ मिल जाती हैं जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भाषा संप्रेषण का माध्यम होने के साथ सामाजिक संबंध स्थापित करने का भी महत्वपूर्ण साधन है। समाज सापेक्ष होने के कारण भाषा में सामाजिक संदर्भ जुड़े होते हैं।

भाषा के द्वारा ही मनुष्य सामाजिक बना है। भाषा व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार में अपना लक्ष्य पाती है तथा उसका सामाजिक व्यवहार उन सामाजिक परिस्थितियों द्वारा नियंत्रित होता है, जो स्वयं में विविध रूपी होती है। अतः भाषा भी अपने व्यक्त रूप में विविध रूपी हो जाती है। एक ही भौगोलिक संरचना के भीतर भिन्न–भिन्न वर्गों की बोलियों में अंतर होता है। यह अंतर सामाजिक स्तर भेद के कारण ही होता है। यही कारण है कि किसी समाज में रहने वाला एक व्यक्ति 'श्रीमान' का, तो दूसरा 'सर' का और तीसरा 'हुजूर या माई दृ बाप' का प्रयोग करता है।

मनुष्य अपने परिवेश एवं समाज की आवश्यकता के अनुसार भाषा का स्वरूप गढ़ता है। भाषा शैली के रूप में उर्दू का जन्म एवं विकास सामाजिक आर्थिक परिवर्तन का ही परिणाम था। हिंदी प्रदेश में 19वीं सदी में ब्रज एवं अवधी के स्थान पर खड़ीबोली हिंदी के प्रयोग के पीछे सामाजिक कारण ही रहे हैं। ठीक इसी प्रकार भाषा के द्वारा समाज एवं राष्ट्र भी प्रभावित होते हैं। भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में हिंदी भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । इस भाषा के माध्यम से ही विभिन्न प्रदेशों के लोग अंग्रेजों के विरूद्ध संघर्ष करने हेतु एक मंच पर आते हैं। अतः भाषाई अस्मिता ही सामाजिक अस्मिता का निर्माण करती है। भाषा अपने बोले जाने वाले समाज के लोगों को जोड़कर रखती है। यह जुड़ाव भावात्मक स्तर पर होता है। इसी से एक भाषाई समुदाय की परिकल्पना सामने आती है।

भाषा का साध्य संप्रेषण है और सामाजिक वह शक्ति है जो एक क्षेत्र विशेष के लोगों को भावना एवं चिंतन के धरातल पर एक इकाई में बाँधती है। इस इकाई को ही भाषाई समुदाय कहा जाता है। भाषाई समुदाय को स्पष्ट करते हुए रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने कहा है– "भाषाई समुदाय उन व्यक्तियों के संस्थागत समूह का नाम है जो होने को एक भाषी या बहुभाषी हो सकता है पर जिसके सदस्य अपनी संप्रेषण–व्यवस्था में समान रूप से भाषिक प्रतीकों का इस्तेमाल करते हैं और अपने सामाजिक व्यवहार में जब–जब किसी भाषा, बोली या शैली का चुनाव करते हों तो उसके चुनाव का आधार भी समान होता है। चुनाव का यह समानधर्मी आधार भाषा समुदाय के व्यक्तियों को एक–दूसरे के न केवल नजदीक लाता है, बल्कि दूसरे भाषाई समुदाय के व्यक्तियों से अलग भी करता है।"[8]

भाषा की इस संकल्पना के आधार पर ही डॉ. रामविलास शर्मा हिंदी प्रदेश एवं हिंदी जाति की अवधारणा सामने लाते हैं। वे जाति को भाषा से जोड़कर देखने का आग्रह करते हैं तथा धर्म से उसके संबंध को खारिज कर देते हैं– "तुर्क और पठान यहाँ की भाषा बोलते थे, यहाँ रहते हुए यहीं के हो गये थे। वे जातीयता के मुख्य प्रतीक अपनी भाषा खो चुके थे। धर्म का भेद होने से जातीयता का भेद नहीं होता जैसे अरब, तुर्क, पठान, ईरानी सब एक धर्म इस्लाम को मानने पर भी एक जाति के नहीं हो

जाते।"[9] डॉ. रामविलास शर्मा हिंदी जाति को हिंदी भाषाई समाज के पर्याय के रूप में देखने के पक्ष में हैं। इस हिंदी जाति में हिंदी भाषा की तमाम शैलियों (हिंदी, उर्दू, हिंदुस्तानी) एवं जनपदीय बोलियों का प्रयोग करने वाले लोग आ जाते हैं। इस प्रकार हिंदी भाषा के अंतर्गत खड़ीबोली, ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मगही आदि बोलियाँ तथा उर्दू, हिंदुस्तानी एवं उच्च हिंदी का समावेश हो जाता है। ये सब मिलाकर एक व्यापक भाषा क्षेत्र का निर्माण करती है, एक जाति का निर्माण करती है।

भाषा केवल संप्रेषण व्यवस्था का ही एक प्रयोजन सिद्ध रूप नहीं है, बल्कि वह एक सामाजिक संस्था भी है। भाषा के द्वारा जातीय पुनर्गठन के इतिहास को भी जाना जा सकता है। जातीय पुनर्गठन की प्रक्रिया सामाजिक होती है। जहाँ कोई बोली सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक कारणों से अधिक महत्व प्राप्त कर लेती है तथा आगे चलकर सामाजिक अस्मिता का आधार बन जाती है। आज भाषा के रूप में खड़ीबोली हिंदी विभिन्न बोलियों के बीच संपर्क भाषा का काम कर रही है तथा अन्य जनपदीय भाषाएँ–ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मगही आदि उसकी बोलियाँ कहलाती हैं। भाषा और बोली के बीच विभाजन रेखा खींचना एक समस्या है। दोनों अपने प्रयोजन में सिद्ध होते हैं। व्याकरण एवं बोधगम्यता के आधार पर इन्हें अलग करने की कोशिश की जाती है, किंतु हर जगह यह सटीक नहीं बैठता। उदारहणस्वरूप बँगला और असमिया में पर्याप्त व्याकरणिक समानता और पारस्परिक बोधगम्यता है, पर दोनों अलग–अलग भाषा के रूप में मान्य है। इसके विपरीत भोजपुरी जो कि अपनी व्याकरणिक विशिष्टताओं एवं बोधगम्यता की दृष्टि से खड़ीबोली से अलग है, (जैसा कि ग्रियर्सन एवं उदयनारायण तिवारी मानते हैं) फिर भी वह हिंदी की एक बोली मानी जाती है। इस प्रकार दो अलग–अलग भाषाओं में भी परस्पर बोधगम्यता हो सकती है। राधाकृष्ण सहाय के अनुसार– "बँगला, उड़िया, असमिया–ये तीनों स्वतंत्र भाषाएँ हैं। इनके भाषा रूप पूर्णतया मानक है। ये तीनों पृथक–पृथक् प्रान्त हैं तथापि इन क्षेत्रों के शिक्षित भाषा–भाषी आपस में एक दूसरे के साथ खुलकर संभाषण करते हैं कर सकते हैं।"[10]

भाषा और बोली को अलग करने का एक और आधार होता है। वह है– साहित्य और संस्कृति के आधार पर बनी जातीयता अर्थात् जातीय बोध। इसी आधार पर बँगला, असमिया और उड़िया को अलग भाषा कहा जा सकता है तथा भोजपुरी को भी हिंदी की एक बोली के रूप में सिद्ध किया जा सकता है। रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव भाषा और बोली की समस्या को जातीय बोध से जोड़कर देखते हैं। उनके अनुसार– "वस्तुतः भाषा–बोली की अवधारणा का जन्म ही तब होता है जब कोई लघुजाति, महाजाति, के रूप में उभरती है और लघु जनपद, महाजनपद के रूप में स्वीकृत होने लगता हैजिस लघुजाति का किसी महाजाति से संबंध ही न हो, उसकी भाषाई संप्रेषण व्यवस्था को आप 'भाषा' कह ले या 'बोली', कोई फर्क ही नहीं पड़ता क्योंकि उस स्थिति में भाषा–बोली का भेद ही निरर्थक ठहरता है।"[11]

भाषा के संदर्भ में मानक एवं अमानक भाषा का जो भेद दिखाई पड़ता है, वह भाषाई गुणों पर आधारित न होकर सामाजिक मूल्यों पर आधारित होता है। मानक भाषा सामाजिक–सांस्कृतिक प्रक्रिया के माध्यम से परिनिष्ठित की हुई भाषा है। अमानक भाषा औपचारिक स्थिति में व्यवहार में नहीं लाई जाती है। लेकिन हम इसे अशुद्ध भाषा नहीं कह सकते हैं, क्योंकि भाषा विज्ञान की दृष्टि से भाषा शुद्ध या अशुद्ध नहीं होती है। अमानक भाषा में भी हम भाषा के सभी संरचनात्मक तत्व पा सकते हैं तथा व्याकरणिक दृष्टि से भी यह नियमबद्ध होती है। अतः भाषा की 'शुद्धता' का आधार भाषिक न होकर सामाजिक होता है। मानक या अमानक भाषा समाज की मूल्यपरक दृष्टि पर आधारित होती है।

अमानक भाषा में हीनता कहीं है, तो वह समाज में प्रयोक्ता के संदर्भ में है। अतः भाषागत यह भेद सामाजिक संरचना से उत्पन्न होता है। ठीक इसी प्रकार यह भी सत्य है कि कोई भी भाषा विकसित एवं अविकसित अथवा संपन्न एवं विपन्न नहीं होती है, जैसा की अंग्रेजी एवं हिंदी को लेकर कमोबेश आज तक यह धारणा बनी हुई है। भाषा पर संपन्नता एवं विपन्नता का यह तमगा उसके प्रयोक्ता के सामाजिक, आर्थिक स्थिति के कारण लगता है।

इस आधार पर हम कह सकते हैं कि मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक सभी दृष्टियों से मातृभाषा ही सबसे उपयुक्त भाषा है। अतः केवल अंग्रेजी ही ज्ञान एवं तर्क की भाषा नहीं हो सकती है। ऐसा भी नहीं है कि अन्य भाषा की तुलना में अंग्रेजी अपने आप में पूर्ण एवं वैज्ञानिक भाषा है। भारत में अंग्रेजी के वर्चस्व का कारण केवल यह है कि इस भाषा में शिक्षा प्राप्त करने से सामाजिक पद प्रतिष्ठा मिलती है। यह भाषा नौकरी दिलाने में सहायक है तथा इस भाषा में सर्जनात्मक कार्य करने से अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करने की संभावना ज्यादा रहती है। कुल मिलाकर शिक्षा एवं व्यवसाय आदि क्षेत्रों में किसी अन्य भाषा के चुनाव का यही कारण रहता है। हिंदी भाषी क्षेत्र में अंग्रेजी के प्रभुत्त्व को स्वीकारने के पीछे वह औपनिवेशिक मानसिकता भी है जिसे हम आज तक तोड़ नहीं पाए हैं। रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने मातृभाषा पर विचार करते हुए कहा है कि– "अविकसित एवं विपन्न कहे जाने वाली मातृभाषा को व्यवहार का उचित संदर्भ और प्रयोजन के बहुआयामी लक्ष्य साधने का उचित वातावरण दीजिए, वह मातृभाषा स्वयमेव विकसित हो जाएगी।"[12] इस प्रकार से किसी भी भाषा में यह शक्ति निहित होती है कि वह विश्व की मान्य एवं प्रतिष्ठित भाषा बन सके। उसे केवल 'व्यवहार के उचित संदर्भ' में विकसित करने की जरूरत होती है।

अतः हम कह सकते हैं कि भाषाई अस्मिता ही सामाजिक अस्मिता का निर्माण करती है। डॉ. रामविलास शर्मा हिंदी जाति तथा हिंदी प्रदेश की परिकल्पना भाषा के आधार पर ही करते हैं। कह सकते हैं कि भाषा पहचान का सबसे सशक्त माध्यम होती है। यह एक और जहाँ समाज द्वारा परिवर्तित होती है, वहीं समाज में परिवर्तन का वातावरण उपस्थित करने की क्षमता भी रखती है।

संदर्भ

1. शर्मा, रामविलास. भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी. खण्ड–3. पृष्ठ 234.
2. कोपलैंड, निकोलस., जवोर्सकी. समाज भाषाशास्त्र. पृष्ठ 31.
3. शर्मा, रामविलास. भाषा और समाज. पृष्ठ 408.
4. शर्मा, रामविलास. भाषा और समाज. पृष्ठ 408.
5. सिंह, शिवभानु. समाज दर्शन का सर्वेक्षण. पृष्ठ 42.
6. सिंह, शिवभानु. समाज दर्शन का सर्वेक्षण. पृष्ठ 42.
7. ब्लूमफिल्ड., प्रसाद, विश्वनाथ. (अनु.). भाषा. पृष्ठ 25.
8. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ. भाषाई अस्मिता और हिंदी. पृष्ठ 11.
9. शर्मा, रामविलास. भाषा और समाज. पृष्ठ 287.
10. सहाय, राधाकृष्ण. भाषा और साहित्य. पृष्ठ 30.
11. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ. भाषाई अस्मिता और हिंदी. पृष्ठ 49.
12. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ. हिंदी भाषा का समाजशास्त्र. पृष्ठ 153.